# गीता द्वारा आदर्श व्यक्तित्व निर्माण

**हरीश दत्त**
**शोधार्थी**
संस्कृत व पालि विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

गीता एक ऐसी ज्ञानगंगा है, जिसकी विचारधारा में समस्त आध्यात्मिक सत्य और उसकी सहज अनुभूतियों की लहरे स्पष्टतः हमें परिलक्षित होती है गीता में दिव्यकर्म, दिव्य ज्ञान, दिव्य भक्ति की त्रिवेणी एक साथ लहराती है। गीता व्यक्ति को परहितव्रती बनाती है। इसका परहित व्रत किसी सीमा से आबद्ध नहीं है, यह तो जाति, धर्म, वर्ण या वर्ग–विशेष से परे प्राणिमात्र तक पहुँचाता है। आसक्ति और वासना के साधारण दोषों से प्रारम्भ कर गीता यह बतलाने का प्रयास करती है कि नित्य–नैमित्तिक कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ व्यक्ति किस प्रकार शान्त, तुष्ट, स्थितप्रज्ञ एवं योगस्थ रहकर अपने व्यक्तित्व को उन्नत कर सकता है।

**मुख्य शब्दः** स्थितप्रज्ञ, गीता, दिव्यकर्म, दिव्य ज्ञान, दिव्य भक्ति इत्यादि।

**भूमिकाः**

'गीता' ऐसे मन्त्रदृष्टा ऋषि के निजी अनुभवों पर आधारित है, जिन्हें परिवर्तन और आवागमन की इस दुनिया की परिधि में और उसके बाहर भी एक असीम आध्यात्मिक सता की उपस्थिति का बोध था। मानव जाति की परम सता के साथ एकत्व की विशेष निजि अनुभूति थी जिस अनुभूति की श्रृंखला युग–युगान्तर तक टूटी नहीं, जो आज भी अपने गहनतम भावों की सरलतम अभिव्यक्ति के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं।

भारतीय अध्यात्मचिन्तन के प्राणभूत, वैदिक संस्कृति के सारस्वरूप गीता की महता वागतीत है। गीता के सात सौ श्लोकों में वेदों का सार वर्णित है। इसकी भाषा जितनी सरल है, भाव उतने ही अधिक गम्भीर है, गीता के सन्दर्भ में एक प्रचलित गाथा के अनुसार व्यास जी ने अट्ठारह पुराण, नौ व्याकरण और चारों वेदों का मन्थन कर महाभारत की रचना की उस महाभारतरूपी सागर का मन्थन करने से गीता प्रकट हुई और उस गीता का सार निकाल कर कृष्ण ने धुनर्धर अर्जुन के मुख में डाल दिया यथा :

अष्टादश पुराणानि नव व्याकरणानि च।
निर्मथ्य चतुरो वेदान् मुनिना भारते कृतम्।।
भारतो दधि निर्मथ्य गीता निर्मथितस्य च।
सारमुद्धत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुश्वे धृतम्।।[1]

वेदों की तरह गीता भी अपौरूषेय है। चूंकि वैदिक आदेशों को यथारूप में बिना किसी मानवीय विवेचना के स्वीकार किया जाता है, अतः उसी तरह गीता को भी मानवीय विकास सहित तर्क–वितर्क के परे यथास्वरूप ग्रहण करना चाहिए आज समाज विषय परिस्थिति से गुजर रहा है आज गीता एवं वेदों, दार्शनिकों की बातें मनुष्य को कल्पना में कही गयी लगती है, यही विचारधारा मनुष्य को मनोवैज्ञानिक रूप से उस परा सता से दूर करती है जो यथार्थ में है गीता में द्वितीय अध्याय में इसी बात का वर्णन है कि "विषयों का चिन्तन करते रहने से मनुष्य के मन में उनके प्रति आसक्ति पैदा होती है :

[1]. महाभारत शान्तपर्व, 347.10, 348.10

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।[2]

मनुष्य का चिन्तन विषय ही यदि शुद्ध या मोक्ष हेतु न होकर अपितु योग, ऐश्वर्य एवं दिखावे का है तो वह किस प्रकार अपने लक्ष्य को सार्थक करे?

## गीता में कर्म व्यवहार द्वारा व्यक्तित्व निर्माण

गीता के समन्वयात्मक सन्देश का क्षेत्र सार्वभौम है। यह हमारे व्यावहारिक जीवन का दार्शनिक आधार है भारतीय समाहारी संस्कृति को यह एक संश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति है गीता की रचयिता आध्यात्मिक समालोचक न होकर सर्वग्राही है वह न तो किसी सम्प्रदाय का समादेष्टा है न ही किसी सम्प्रदाय का संस्थापक, गीता के माध्यम से उसने मनुष्य मात्र के लिए व्यावहारिक जीवन का मार्ग प्रशस्त किया है गीता का चरम लक्ष्य मनुष्य को जीवन के लिए व्यवहारिक शिक्षा देना है। गीता के अनुसार मनुष्य विभिन्न तत्त्वों का एक आकार है यही कारण है कि चाहकर भी मनुष्य एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय नहीं रह सकता कर्म तो उसकी विवशता है प्रकृति से अर्जित गुणों के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कर्म करना ही पड़ता है:

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिदृत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैगुणैः।।[3]

अपने कर्म से ही मनुष्य सर्वोच्च सता तक पहुंच सकता है बिना कर्म किये मनुष्य के शरीर का निर्वाह भी सम्भव नहीं है मनु ने भी कहा है कि मनुष्य आलस्य रहित होकर वेदोक्त स्वकर्म करते रहना चाहिए :

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्तिं प्राप्नोति परमां गतिम्।।[4]

गीता कर्म की महत्ता जीवन के लिए स्वीकार करती है। कर्म से ही व्यक्ति का संसार से सम्बन्ध स्थापित होता है जहाँ तक नैतिकता का प्रश्न है, वह शुद्ध रूप से सांसारिक तथ्यों से सम्बद्ध हैं; किन्तु मनुष्य की महत्त्वकांक्षा आध्यात्मिक सुख–प्राप्ति के लिए होती है। जगत् के भौतिक तत्त्वों से इसकी उपलब्धि सम्भव नहीं है। विश्व की एकता गीता का आधारभूत सिद्धान्त है, पूर्णता की प्रगति पुण्य है और इससे भिन्न पाप है कर्म करने का अधिकार तो सबको है, किन्तु उस कर्म के फल का व्यक्ति अधिकारी नहीं हो सकता। किसी भी व्यक्ति को कभी भी अपने कर्मफल का अपने आपको कारण नहीं मानना चाहिए :

कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमां ते सङगोऽस्त्वकर्मणि।।[5]

'लोक संग्रह' के निमित आसक्ति रहित होकर जो कुछ भी कर्म करे, उसे कर्म को अर्पण कर दे, यह कर्म के सन्दर्भ में गीता का सारगर्भित समन्वयात्मक दृष्टिकोण है। इसी दृष्टिकोण के सिद्धान्त पर मनुष्य अपने व्यक्तित्व को सृदढ़ बनाकर परम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकता है।

## गीता से 'तत्व' ज्ञान का बोध

भारतीय दर्शनों की एक समानता यह भी है कि वे अज्ञान को बन्धन का कारण मानते हैं

तत्वज्ञान के अभाव से ही शरीर–बंधन है और दुःखों की उत्पत्ति होती है इनसे मुक्ति तभी मिल सकती है जब संसार तथा आत्मा का तत्वज्ञान प्राप्त हो "महान दार्शनिक सोक्रेटिस (वबतंजमे) का कथन है कि "तत्व ज्ञान ही धर्म है" (टपतजनम पे ादवूसमकहम)" "उनके अनुसार तत्व का ज्ञान होने से ही मुक्ति मिल सकती है, हमारे कर्म स्वभावतः धार्मिक नहीं होते, उनकी उत्पत्ति बहुधा वासनाओं तथा नीच प्रवृत्तियों के कारण होती है अतः जब तक तृष्णाओं तथा नीच प्रवृतियों का पूर्ण नियंत्रण नहीं हो सकता तब तक तत्वज्ञान सम्भव नहीं" गीता का दर्शन शास्त्र यहाँ पर मनुष्य को तत्त्व

---

[2]. गीता 2.62
[3]. गी॰ 3.5
[4]. मनुस्मृति 4.10
[5]. गी॰ 2.47

विवेचना के बारे में बड़े ही सरल ढंग से ईश्वर एवं तत्व के सम्बन्ध को स्थापित कर उसकी व्याख्या करता है।

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।।[6]

## गीता में ज्ञानयोग द्वारा व्यक्तित्व निर्माण

ज्ञान का महत्त्व बतलाते हुए गीता में कहा गया है कि जब मनुष्य के मन–बुद्धि पर सात्विक ज्ञान का प्रभाव पड़ता है तब दैहिक स्वभाव पर भी समबुद्धि रूप परिणाम प्रतिबिम्बत होने लगता है जब विनम्रता, दम्हीनता, अहिंसा, सहिष्णुता, सरलता, गुरुसेवा, पवित्रता, आत्मसंयम, इन्द्रियतृप्ति के विषयों का परित्याग, आत्म–साक्षत्कार की महता इन सब गुणों से व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्ण होगा तभी अज्ञान से बाहर आकर वास्तविक ज्ञान 'तत्व' के ज्ञान से लाभान्वित होगाः

"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः"[7]

गीता के अनुसार ज्ञान की तरह पवित्र और कोई वस्तु नहीं है वह ज्ञान जो व्यक्त है या अभी भी अव्यक्त है। केवल ज्ञान ही दोनों रूपों में (व्यक्त एवं अव्यक्त) रूपों में मोक्ष का साधन है, व्यक्तित्व निर्माण का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते मामबुद्धयः।
परम्भावजान्नतो ममाव्ययमनुतमम्।।[8]

प्रकृति अर्थात् दैवी माया, अज्ञान पुरुषोतम अर्थात् ईश्वर की माया है इस माया के जो पार कर जाते हैं, जिसके हृदय में ज्ञानोदय हो चुका है, वह संशयरहित होकर अपने विवेक से मोक्ष प्राप्त करता है।

## आदर्श मानव

गीता के अनुसर जीवन का आदर्श क्या है? आदर्श मानव कैसा होता है? वह जो घरबार छोड़कर जंगल में भागकर अरण्य की शरण लेता है अथवा वह, जो इस संसार में विषम स्थितियों के ऊपर अपना प्रभुत्व जमाकर जीवन को आगे बढ़ाता है? इस विषय में भिन्न–भिन्न मत हैं, परन्तु तथ्य तो यह है कि गीता व्यवहार–शास्त्र है, जो अध्यात्म–ज्ञान की दृढ़ भूमि पर अवस्थित है। इसीलिए गीता की पुष्पिका में **'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'** दो महत्त्व के शब्द मिलते हैं। यह योगशास्त्र है – कर्तव्यशास्त्र है, जो अपने खड़े होने के लिए ब्रह्मविद्या के दृढ़ आधार पर आश्रित है । गीता का सारांश कहीं श्लोक में, कहीं श्लोक के अर्धभाग में और कहीं श्लोक के चतुर्थ भाग में ही उद्घोषित किया गया है। इस श्लोक में गीता का तात्पर्य निविष्ट हैः

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणातमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।[9]

अर्थात् – जिससे प्राणियों की प्रवृत्ति हुई कि वे अपने विशिष्ट कर्मों में लगें तथा जिससे यह समस्त विश्व रचित है, उस परम सत्ता को अपने कर्म से उसकी पूजा कर मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है – इस श्लोक के अनुसार सिद्धि लाभ का एक ही मार्ग है – परम सत्ता की अर्चना और वह सिद्ध होती है –'स्वकर्म' की उपासना से। फलतः मानव को चाहिए कि वह अपने वर्णाश्रम के द्वारा नियत कर्मों का सम्पादन करे, उनके फलों को परम सत्ता के चरणों में अर्पित करे और इस प्रकार उसे अपने जीवन में सिद्धि अवश्यमेव प्राप्त होती है। इस प्रकार स्वकर्म से भगवत्–चर्चा और भगवत्–चर्चा से सिद्धि–लाभ यह साधना का व्यावहारिक पक्ष गीता को अभीष्ट है। **'मामनुस्मर युध्य च'** (मुझे सतत स्मरण करते हुए युद्ध करो, जीवनसंग्राम में अपनी विरुद्ध शक्तियों से)– इसका भी आशय यही है। इस प्रकार गीता संसार से भागने का उपदेश नहीं देती, प्रत्युत संसार में डटकर खड़ा होने, अपनी विषम परिस्थितियों से जूझने तथा अन्त में विजय पाने की उदात्त शिक्षा गीता हमें

---

6. गी॰ 14.36
7. मुक्तो॰ उपनिषद् 1.4.7
8. गी॰ 7.24
9. गी॰ 10.46

सर्वदा देती है। इसलिए गीता का आकर्षण सार्वभौम तथा सार्वकालिक है – सब समयों के लिए, सब परिस्थितियों के लिए, सब मानवों के लिए इसका उपदेश समान रूप से उपयोगी है।

गीता ने आदर्श मानव का वर्णन तीन स्थलों पर किया है– स्थितप्रज्ञ (द्वितीय अध्याय 55–72), भक्त (12/13–19) तथा गुणातीत (14/21–27)। ये तीनों वर्णन एक समान हैं – इनमें समरसता है। यही गीताभिमत जीवन्मुक्त का भी लक्षण है। आदर्श मानव सब प्राणियों से मित्रता करने वाला, अद्वेष्टा, करुण, ममता तथा अहंकार से हीन, दुःख और सुख को समान मानने वाला तथा क्षमाशील होता है। वह न हर्ष के वश में जाता है और न द्वेष के; न शोक करता है और न आकांक्षा रखता है। वह शुभ तथा अशुभ कर्मों के फल का त्याग करने वाला होता है। 'स्थितप्रज्ञ' का मान्य लक्षण यही है:

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।[10]

अर्थात् – वह दुःखों से कभी उद्विग्नन नहीं होता, सुखों में स्पृहा नहीं रखता। राग, भय तथा क्रोध से विरहित होता है। यही मनशील व्यक्ति 'स्थितधी, स्थितप्रज्ञ, स्थिरधी' आदि नाना नामों से अभिहित किया जाता है।

## उपसंहार

प्रत्येक कर्तव्य पवित्र है और कर्तव्य निष्ठा ही भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है और यही सब दार्शनिक आयाम व्यक्तित्व के स्तम्भ है इनके द्वारा हम कर्मशः अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए एक ऐसी अवस्था को प्राप्त कर सकते है जो हमारे जीवन का अति महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है मानव–जीवन में सर्वोत्कृष्ट या सर्वश्रेष्ठ अनुभूत तथ्य मोक्ष है, पर इसे प्राप्त करने के लिये ऊपर उठना, व्यक्तित्व को विकसित करना श्रम एवं साधना है, यही सच्चा पुरुषार्थ है ऊपर उठकर मुक्तिपाना जीवन की सर्वाधिक श्रेष्ठतम उपलब्धि एवं सुन्दर कला है:

"ऋते ज्ञानात्त मुक्तिः"

गीता एक ऐसा महान दार्शनिक ग्रन्थ है जिसने सभी विषयों को प्रश्न मानकर नाना शास्त्रों के, पुराणों के, उपनिषदों के उत्तरो को श्रृंखला बद्ध कर मनुष्य के व्यक्तित्व विकास के लिये रख दिया। गीता ने मनुष्य के ज्ञान को प्रथम आयाम से प्रारम्भ कर सिखाया यदि आप स्वयं की सत्ता से अपिरिचत है तो वह जानना वस्तुतः जानना नहीं है ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य, जिसके केन्द्र पर स्व–ज्ञान न हो?

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम।।[11]

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की प्रथम सीढ़ी स्व–ज्ञान से ही प्रारम्भ होती है, क्योंकि प्रथम तो स्व ही निकट है दूसरी अवस्था, प्रकृति, माया, अज्ञान का बोध तो बाद का विषय है परन्तु जिसने स्वः से अध्ययन प्रारम्भ नहीं किया तो आत्म–ज्ञान से अपने तत्व को वह अन्य दूसरे में कहाँ खोजेगाः

भक्त्या मामभिजानाति यावान् याश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।[12]

यद्यपि परज्ञान और पराभक्ति एक ही है और ज्ञान तथा भक्ति का चरम लक्ष्य भी मोक्ष प्राप्ति ही है तथापि निर्गुण उपासना को गीता 'अधिक क्लेश युक्त' और कठिन बताती है एवं सगुण उपासना का उपदेश देती है गीता का प्रपति या शरणागति पर अत्यन्त बल है। सच्चे हृदय से भगवद की शरण लेने पर सब कुछ वे ही संभाल लेते है, साधना के द्वार खुलते जाते है और अन्त में भगवद्नुग्रह से भगवत्प्राप्ति होती है। गीता में कृष्ण का मनुष्य को यही सन्देश है:

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

---

[10]. गी॰ 2.56
[11]. गी॰ 2.12
[12]. गी॰ 18.55

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षपिण्यामि मा भुचः।।[13]

अर्थात् हे मानव! सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा। में तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा–चिन्ता मत कर

आज हर मनुष्य अपने किये पाप कर्म के कारण दुःखी एवं कुण्ठित है वह भी इनका प्रायश्चित कर पापों से छूटना चाहता है, इसलिये गीता ज्ञान के द्वारा जब अपने धर्म, वर्ण आश्रम आदि से विरक्त हो ईश्वर के ही शरण में होगा तभी भगवदाश्रय के साथ–साथ भक्ति एवं मुक्ति की प्राप्त कर लेगा जो कि मानव जीवन का परम लक्ष्य है

इस प्रकार गीता ज्ञान द्वारा जान लिया है जिसने तत्व ज्ञान को वही व्यक्ति आत्मा का ज्ञान, परमात्मा के साथ ऐक्य स्थापित करके गीता द्वारा ही स्थितप्रज्ञ कहा गया है। यही मानव के व्यक्तित्व की सर्वश्रेष्ठ अवस्था है जिसमें वह स्थितप्रज्ञ है, त्रिगुणातीत है, ब्रह्मभूत है गीता के अनुसार मानव जीवन के लिए यही आदर्श व्यक्तित्व हैः

अद्धेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुखसुखः क्षमी।।[14]

गीता की दृष्टि में ऐसा ही मानव जगत का उपकार करने वाला तथा स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय कर जीवन की लक्ष्यसिद्धि करने वाला होता है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. गीता रहस्य–तिलक, लोकमान्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1919.
2. गीता रहस्य – तिलक लोकमान्य, बालगंगाधर, मोतीलाल बनारसीदास, मुम्बई, 1975.
3. श्रीमद्भगवदगीता– शाॅरभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1955.
4. श्रीमद्भगवदगीता– असली लाहौरी, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 1998.
5. श्रीमद्भागवत पुराण – वेदव्यास, महर्षि, हिन्दी अनुवाद, स्वामी अखण्डानन, सरस्वती, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1970.
6. महाभारत – वेदव्यास, महर्षि, हिन्दी अनुवाद, स्वामी अखण्डानन, सरस्वती, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1978.
7. मुक्तिकोपनिषद् – रामतीर्थ, स्वामी, गीताप्रैस, गोरखपुर, 2002.
8. मनुस्मृति – योगन्द्रानन्द, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1996.
9. तत्व टीका – वेङ्कटनाथ, निर्णय सागर, प्रेस, बम्बई, 1976.
10. भारतीय दर्शन – चटर्जी एवं दास, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1995.


[13]. गी॰ 18.66

[14]. गी॰ 12.13